|| श्रीहरि: ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 11: विश्वरूपदर्शनयोग

4/4 (श्लोक 39-55), शनिवार, 08 फ़रवरी 2025

विवेचक: गीता विशारद श्री श्रीनिवास जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/4GzJ76XwvyE

अनन्य भक्ति से विश्वरूपदर्शन सम्भव

सुमधुर प्रार्थना, हनुमान चालीसा पाठ तथा सुन्दर मन्त्रोच्चार के साथ आज के अद्भुत सत्र का शुभारम्भ हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता एक अनुपमेय गीत है, जो श्रीभगवान ने प्रत्यक्ष समराङ्गण में गाया। उस गीत के एक अत्यन्त अद्भुत अध्याय का चिन्तन हम आज कर रहे हैं जो अध्याय विश्वरूपदर्शन है। हमने देखा कि ज्ञानेश्वर महाराज ने त्रिवेणी सङ्गम प्रयागराज के समान इस अध्याय को कहा है। प्रयागराज में गङ्गा और यमुना ऊपर से बहती हैं और सरस्वती माँ अर्थात् ज्ञान की धारा अन्दर से बहती है जो हमें पहचाननी पड़ेगी। इस अध्याय के अन्तिम श्लोक को आदिगुरु शङ्कराचार्य जी का सर्वोपरि श्लोक माना जाता है।

हम ऐसा अध्याय देख रहे हैं जिसे परम श्रद्धेय गुरुदेव ने समाधियोग की उपमा दी है। समाधियोग का चिन्तन करना सम्भव नहीं है, किन्तु पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से प्रवाहित उस ज्ञानधारा का तीर्थप्राशन करते हुये हम इस अध्याय का चिन्तन करने का प्रयास कर रहे हैं।

हमने देखा कि अर्जुन ने श्रीभगवान से अनुनय की, कि मैं आपका दिव्य विश्वरूप देखना चाहता हूँ जिसमें समस्त विश्व बसा हुआ है। श्रीभगवान ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान की और इस दिव्य दृष्टि से अर्जुन श्रीभगवान के शरीर में ही उनके विविध रूप देख रहे हैं। अर्जुन भय कम्पित हो गये और उन्होंने पूछा कि "आप कौन हैं?" क्योंकि जब हमें ऐसे भयावह रूप दिखायी देते हैं तब हमें ऐसा नहीं लगता कि वे श्रीभगवान के रूप हैं।

यह अध्याय हमें सिखाता है कि ब्रह्माण्ड में जो भी घटित हो रहा है, वह परमात्मा में घटित हो रहा है। यह अध्याय हमें स्वीकार करने की दिव्य दृष्टि प्रदान करता है। जीवन में जो भी होता है, वह सब किस प्रकार से हो रहा है? यह समझने की दूरदृष्टि प्रदान करने वाला यह अध्याय है, इसलिए पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि यह सर्वोपरि अध्याय है तथा यह समाधियोग कहलाया, किन्तु इस अध्याय का वास्तविक गूढ़ ज्ञान हमें चिन्तन से ही धीरे-धीरे ज्ञात होगा।

अर्जुन ने श्रीभगवान की स्तुति प्रारम्भ की। जब श्रीभगवान ने कहा-

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः।

श्रीभगवान कहते हैं, "मैं यहाँ काल बनकर आया हूँ। मैंने इन लोगों को पहले ही समाप्त कर दिया है तथा ये मात्र कठपुतलियाँ हैं जिनके धागे मैंने तोड़ दिये हैं, अतः तुम इन्हें मार कर गिरा सकते हो।" श्रीभगवान अर्जुन को पहले ही भविष्य बता रहे हैं। इसके

उपरान्त अर्जुन के हाथ जुड़ गये तथा अर्जुन के मुखारविन्द से वह मङ्गलमय श्लोक प्रवाहित हुआ-

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः।।

इस प्रकार अर्जुन ने श्रीभगवान की स्तुति प्रारम्भ की। इस श्लोक का महत्त्व अपरम्पार है। इसके विषय में पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि यह हमारे जीवन का भय दूर कर सकता है। हमें इसका चिन्तन बारम्बार करना चाहिए। अर्जुन कहते हैं-

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्

"ऐसा कौन है जो आपकी महिमा जानने के उपरान्त आपको नमन नहीं करेगा? कोई भी जब आपका यह सर्वश्रेष्ठ विश्वरूप देखेगा, आपकी गरिमा देखेगा, आपकी सर्वोपरि महान शक्ति देखेगा, तो ऐसा कौन होगा जो आपको नमन नहीं करेगा?"

अनन्त देवेश जगन्निवास
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत्।

"आप इस जीवन में आप सत्-असत्, दोनों को समाहित किये हुये हैं। आप केवल सत् या असत् नहीं हैं।"

हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से जो अनुभव करते हैं, जो हम नेत्रों से देखते हैं, कर्ण से सुनते हैं, जिसे स्पर्श कर सकते हैं, वही हमें सत्य प्रतीत होता है किन्तु इन्द्रियों से भी परे कुछ सत्य होता है जो हमें असत्य लगता है। जिस प्रकार हम यहाँ पर विश्वव्यापी लहरें (www) नहीं देखते तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वे लहरें हैं ही नहीं। आज यहाँ भी अनेक लहरें होंगी तथा जहाँ आप बैठे हैं, वहाँ भी होंगी किन्तु वे हमें दिखती नहीं हैं, यह भी सत्य है।

यहाँ ज्ञानेश्वर महाराज का अद्‌भुत श्लोक है-

तो तूं त्रिजगतिये वोलावा । अक्षर तूं सदाशिवा।
तूंचि सदसत् देवा । तयाही अतीत तें तूं॥

ज्ञानेश्वर महाराज इसमें और मिठास भर देते हैं। "आप तीनों जगतों को समाये हुये हैं, आप उन्हें बाँधे हुये हैं, आप उन्हें सहलाने वाले हैं। आप ही सत्य हैं और आप ही असत्य भी प्रतीत होते हैं क्योंकि आप इन्द्रियगोचर नहीं हैं। आप सदाशिव हैं।" शिव का अर्थ है कल्याणकारी।

"पाशबद्ध सदाजीवः पाशमुक्त सदाशिवः"

अर्थात् जीव पाशबद्ध है तथा सदाशिव पाशमुक्त हैं।

इसके उपरान्त अर्जुन के मुखारविन्द से और भी मङ्गलमय श्लोक प्रवाहित होते जाते हैं। प्रत्यक्ष समराङ्गण में अर्जुन के मुखारविन्द से जैसे-जैसे एक-एक श्लोक प्रवाहित होता है, वैसे-वैसे अर्जुन के अन्तःकरण में श्रीभगवान की महिमा और गहराई तक उतरने लगती है। अर्जुन को लगता है कि "अरे! यह मेरा सखा, जिसे मैं मित्र मानता था, जो मुझे प्राणों से भी प्रिय लगता है, जिसके हाथों में मैंने अपने रथ के घोड़ों की बागडोर सौंप दी, जिसके हाथों में मैंने अपने जीवन की बागडोर सौंप दी, ऐसे मेरे हृदयस्थ श्रीभगवान इतने महान हैं! यह मुझे आज तक ज्ञात ही नहीं हुआ। आप ही जानने योग्य हैं। यह जीव आपको जानने तथा आपका सान्निध्य प्राप्त करने के लिये यहाँ आता है। यह जीव आपके साथ एकाकार होने के लिये छटपटाता है। यहाँ बहने वाली वायु, अग्नि, वरुण, प्रजापति, शशाङ्क आदि सभी आप हैं। मुझे सभी आपमें ही समाये हुए दिख रहे हैं।"

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः(श्) शशाङ्कः(फ्),
प्रजापतिस्त्वं(म्) प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः(फ्),
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥11.39॥

आप ही वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, दक्ष आदि प्रजापति और प्रपितामह (ब्रह्माजीके भी पिता) हैं। आपको हजारों बार नमस्कार हो! नमस्कार हो! और फिर भी आपको बार-बार नमस्कार हो! नमस्कार हो!

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "आप महान हैं, इसलिए वायु, यम, अग्नि, वरुण, शशाङ्क, प्रजापति अर्थात् सृष्टि के रचयिता ब्रह्मदेव भी आप ही हैं। ब्रह्मदेव के पिता भी आप ही हैं। आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ।" अर्जुन के मुख से बारम्बार नमन, प्रणाम, वन्दन आदि शब्द निकल रहे हैं। वे बारम्बार श्रीभगवान को प्रणाम कर रहे हैं।

कभी-कभी श्रीभगवान को प्रणाम करके हमारा मन भी नहीं भरता। हम चाहते हैं कि हम बारम्बार श्रीभगवान की छवि देखते रहें कि किस प्रकार से श्रीभगवान खड़े हैं! कैसे बाँसुरी हाथ में पकड़े हैं! कैसे मयूर पङ्ख लगाया है! श्रीभगवान कितने सुन्दर हैं! उनके पग कितने सुन्दर हैं!

जिसके मन में परमात्मा के प्रति अत्यन्त प्रीति जागृत होती है, उसका बारम्बार श्रीभगवान को नमन करने का मन होता है। ऐसे ही अर्जुन भी श्रीभगवान को बारम्बार नमन कर रहे हैं और कहते हैं, "आप इतने महान हैं! मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि मैं आपको सामने से नमन करूँ या पीछे से नमन करूँ?"

11.40

नमः(फ्) पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते,
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं(म्),
सर्वं(म्) समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥11.40॥

हे सर्वस्वरूप! आपको आगेसे (भी) नमस्कार हो! पीछेसे (भी) नमस्कार हो! सब ओरसे (दशों दिशाओं से) ही नमस्कार हो! हे अनन्तवीर्य! असीम पराक्रमवाले आपने सबको (एक देश में) समेट रखा है; अतः सब कुछ (आप ही) हैं।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "हे अनन्तवीर्य! (अर्थात् जिनकी वीरता अनन्त है) आपको सामने से नमन है, आप चारों ओर से मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए। आप अनन्त पराक्रमी हैं। यह प्रश्न ही नहीं उठता कि आप कहाँ हैं? प्रश्न यह है कि आप कहाँ नहीं हैं? आप सभी में व्याप्त हैं, इसलिए हम कहीं से भी आपको बारम्बार प्रणाम कर सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज बहुत सुन्दर बात कहते हैं-

म्हणौनिया देवा। तूं वेगळा नव्हसी सर्वां।
हें आलें मज सद्भावा। आतां तूंचि सर्व।।

"अब मैं समझ रहा हूँ कि आप सर्वव्यापी हैं तथा सभी को समाये हुये हैं।" ऐसा कह कर अर्जुन के नेत्रों में अश्रु छलक रहे हैं। अर्जुन कहते हैं-

तरी आतां अप्रमेया। मज शरणागता आपुलिया।
क्षमा कीजो जी यया। अपराधांसि।।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, "आप अप्रमेय हैं।" प्रमेय का अर्थ है- जो सिद्ध किया जाता है। "आपको सिद्ध नहीं किया जा सकता,

आपकी तो अनुभूति होती है। श्रीभगवान! मेरे अपराधों के लिये मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपकी महिमा नहीं जानता था। ऐसे परम सामर्थ्यशाली, अद्वितीय, अप्रतिम महिमा वाले आप मेरे सारथी बने। यह मैंने क्या किया? मैंने इसके पूर्व आपके साथ किस प्रकार से व्यवहार किया?” ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अर्जुन के सामने पिछले कुछ दृश्य उभर कर आ रहे हैं। उन्हें लग रहा है कि श्रीभगवान इतने महान हैं! मैं इनके चरणों में शरणागत था। मैं इन्हें सखा मानकर निरन्तर उनके साथ रहता था। मैं इनसे अलग नहीं होना चाहता था। मैं चाहता था कि इनकी याद निरन्तर मेरे मन में बसी रहे। यह तो मैं जानता था कि ये प्रभावशाली हैं पर यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि ये इतने अधिक प्रभावशाली हैं। जब हमें ज्ञात होता है कि हमारे समक्ष रहने वाला सामान्य सा व्यक्ति इतना महान है, तब जो भाव हमारे मन में उत्पन्न होगा, वही भाव, वही अनुभूति अर्जुन के मन में हो रही थी। अर्जुन के नेत्रों से झरझर अश्रु बहने लगते हैं। अर्जुन को पिछली समस्त घटनाएँ याद आने लगती हैं कि उन्होंने श्रीभगवान को दूत बनाकर दुर्योधन के पास भेजा था तथा दुर्योधन ने उनका अपमान किया था। राजसूय यज्ञ में श्रीभगवान को अतिथियों के पग धोने का कार्य सौंप दिया। वही श्रीभगवान आज मेरे घोड़ों को नदी पर ले जाकर उनके पैरों से शूल निकाल कर उनके घावों को साफ करते हैं। मैंने यह क्या किया? कहाँ ये और कहाँ मैं? मैं तो इनका सखा बनने के भी योग्य नहीं हूँ।"

11.41, 11.42

सखेति मत्वा प्रसभं (म्) यदुक्तं(म्),
हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं(न्) तवेदं(म्),
मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥11.41॥
यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि,
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं(न्),
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥11.42॥

आपकी इस महिमा को न जानते हुए 'मेरे सखा हैं' ऐसा मानकर मैंने प्रमाद से अथवा प्रेम से हठपूर्वक (बिना सोचे-समझे) 'हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे!' इस प्रकार जो कुछ कहा है; और हे अच्युत! हँसी-दिल्लगी में, चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समय अकेले अथवा उन (सखाओं, कुटुम्बियों आदि) के सामने (मेरे द्वारा आपका) जो कुछ तिरस्कार (अपमान) किया गया है; हे अप्रमेयस्वरुप! वह सब आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ अर्थात आपसे क्षमा माँगता हूँ।
आपकी इस महिमा को न जानते हुए 'मेरे सखा हैं' ऐसा मानकर मैंने प्रमाद से अथवा प्रेम से हठपूर्वक (बिना सोचे-समझे) 'हे कृष्ण! हे यादव! हे सखे!' इस प्रकार जो कुछ कहा है; और हे अच्युत! हँसी-दिल्लगी में, चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते समय अकेले अथवा उन (सखाओं, कुटुम्बियों आदि) के सामने (मेरे द्वारा आपका) जो कुछ तिरस्कार (अपमान) किया गया है; हे अप्रमेयस्वरुप! वह सब आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ अर्थात आपसे क्षमा माँगता हूँ।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, “मैं आपके प्रभाव को नहीं जानता था, इसलिए मैंने आपको अपना सखा माना।” साख्यभक्ति बराबर की होती है, इसलिए श्रीभगवान को यह भक्ति अत्यन्त प्रिय है। इसी कारण श्रीभगवान गोपिकाओं के साथ रास भी रचाते हैं, बाँसुरी बजाते हैं, गोपों को अपना सखा मानते हैं, उनके साथ भोजन करते हैं, वन में गायें चराने ले जाते हैं। अर्जुन कहते हैं, “कभी-कभी भूलवश तथा कभी अत्यन्त प्रेमवश सखा भाव से मैंने आपको कन्हैया कहा। आपको कृष्णवर्ण के कारण कृष्ण कह कर पुकारा, मैंने आपको जातिवाचक सम्बोधन ‘यादव’ कहकर भी पुकारा। आप तो सभी जातियों तथा सभी वर्णों को स्वयं में समाये हुये हैं। इतना ही नहीं, जो कभी दिखते नहीं- ऐसे आप, जिस पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ता, आप कभी किसी के प्रभाव से कभी बदलते नहीं हैं। ऐसे अच्युत हैं आप, मैंने कभी-कभी आपसे उपहास भी किया। कभी भोजन के समय, कभी शयन के समय और कभी-कभी एकान्त में भी या कभी-कभी सभी के समक्ष भी मैंने आपसे अनुचित व्यवहार किया, आपका अपमान किया। कभी-कभी खेल में भी मैंने आपके साथ दुर्व्यवहार किया। आप मुझे क्षमा कीजिए।

महाभारत का एक प्रसङ्ग है। जब युद्ध होना निश्चित हो गया था, धृतराष्ट्र ने एक बार सञ्जय को भेजकर पाण्डवों की मन:स्थिति बदलने

का प्रयास किया। सञ्जय के माध्यम से धृतराष्ट्र ने सन्देश भिजवाया कि आप समझदार हैं। मेरे पुत्र मेरी आज्ञा नहीं मानते हैं। आप चाहे तो युद्ध रोक सकते हैं। युद्ध से अत्यधिक हानि होगी। जीवन की क्षति होगी, कुल का क्षय होगा, स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार होगा। जब सञ्जय वापस आए तो धृतराष्ट्र ने पूछा कि "क्या मेरा सन्देश तुमने पाण्डवों को दे दिया?" सञ्जय ने कहा कि "जी हाँ! मैंने आपका सन्देश दे दिया।" धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा कि "क्या तुमने अर्जुन की कुटिया का दृश्य देखा था? क्या अर्जुन तथा श्रीकृष्ण एक साथ थे?" सञ्जय ने कहा, "मैंने विलक्षण दृश्य देखा कि श्रीकृष्ण बैठे हैं तथा उनकी गोद में अर्जुन के पैर थे। अर्जुन सोये हुए थे और श्रीकृष्ण उनके पग दबा रहे थे। धृतराष्ट्र थोड़ा काँप गया। उसने सोचा कि "अरे! इतना सख्य है? कृष्ण तथा अर्जुन का, नर तथा नारायण का सख्य जहाँ होता है, वह हम अन्तिम अध्याय में देखेंगे-

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

वहाँ पर श्री, नीति, लक्ष्मी, विजय सब एक साथ होता है। धृतराष्ट्र ने कहा, "जीतना बड़ा कठिन है।"

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

अहा थोर वाउर जाहलें । अमृतें संमार्जन म्यां केलें ।

वारिकें घेऊनि दिधलें । कामधेनूतें ॥

अर्जुन कहते हैं, "अरे! मैंने जीवन में क्या किया है! अमृत मेरे पास था तथा सम्मार्जन किया, मैंने उससे कुल्ला किया। मेरे पास कामधेनु थी। मैंने उसे छोड़कर एक बछड़ा ले लिया।" ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

यया कौरवांचिया घरा । शिष्टाई धाडिलासि दातारा ।
ऐसा वणिजेसाठीं जागेश्वरा । विकलासि आम्हीं ॥

"अरे! हमने आपको वहाँ शान्ति दूत बनाकर भेजा।"

'कृष्ण म्हणौनि हाकारिजे । यादवपणें तूंतें लेखिजे ।
आपली आण घालिजे । जातां तुज ॥

"आप जाने लगे तो मैंने अपनी शपथ देकर आपको रोक लिया। सम्पूर्ण विश्व के नियन्ता आप हैं और मैं आपको इतना छोटा मानकर, मेरा सखा मानकर शपथ देकर रोकता था।" अब अर्जुन को ये सारे अपराध प्रतीत हो रहे हैं तथा अर्जुन की वाणी रुकती नहीं है।

11.43

पितासि लोकस्य चराचरस्य,
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः(ख्) कुतोऽन्यो,
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥11.43॥

आप (ही) इस चराचर संसारके पिता हैं, (आप ही) पूजनीय हैं और (आप ही) गुरुओंके महान् गुरु हैं। हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्! इस त्रिलोकी में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, (फिर आपसे) अधिक तो हो ही कैसे सकता है!

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "आप सम्पूर्ण चराचर के पिता हैं। आप सर्वश्रेष्ठ हैं, गरिमामय हैं, सबके लिए पूजनीय हैं। आप अतुल्य, अप्रतिम, अनुपमेय हैं। तीनों लोकों में आपके समान अन्य कोई नहीं है तो आपसे अधिक प्रभावशाली इस सम्पूर्ण विश्व में और कौन हो सकता है?"

11.44

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं(म्),
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः(फ्),
प्रियः(फ्) प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥11.44॥

इसलिये स्तुति करनेयोग्य आप ईश्वरको मैं शरीर से लम्बा पड़कर प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहता हूँ। पिता जैसे पुत्रके, मित्र जैसे मित्रके (और) पति जैसे पत्नीके (अपमान)कोसहलेता है, (ऐसे ही) हे देव ! (आप मेरे द्वारा किया गया अपमान) सहनेमें अर्थातक्षमा करनेमें समर्थ हैं।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "हे भगवान्! मैं आपको दण्डवत प्रणाम करता हूँ। आप ईश्वर हैं, आप स्तुति करने योग्य हैं। आप प्रसन्न हो जाइए।" अर्जुन कहते हैं, "आप मुझे कैसे क्षमा कीजिएगा?" यहाँ अर्जुन तीन सम्बन्धों का वर्णन करते हैं, जैसे- पिता अपने पुत्र के प्रेमवश अपने पुत्र के अपराधों को क्षमा करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। एक सखा अपने मित्र के बिना नहीं रह पाता तथा उसके अपराध को क्षमा कर देता है। एक प्रेमी पति अपनी पत्नी को और पत्नी अपने पति को क्षमा करती है, उनके अपराधों को सहन करती है। अर्जुन कहते हैं कि "उसी प्रकार आप भी मेरे अपराधों को क्षमा कर दीजिएगा, उन्हें सहन कर लीजिएगा क्योंकि आप सहन करने में समर्थ हैं।" यहाँ सोढुम् का आशय है सहन करना।

यहाँ अर्जुन ने हमें बताया कि इतने सुन्दर रूप से भी क्षमा याचना की जा सकती है तथा श्रीभगवान को रिझाया जा सकता है।

कभी-कभी हमारे जीवन में भी ऐसे अवसर आते हैं और हमें लगता है कि हम अपने अपराधों की क्षमा कहाँ माँगें? हम श्रीभगवान के चरणों में गिड़गिड़ाएँ, किन्तु वही अपराध न दोहराएँ। हम भी यही श्लोक श्रीभगवान के समक्ष कह दें और कह दें कि "आप क्षमा नहीं करेंगे तो कौन करेगा?"

इस प्रार्थना में तीन प्रकार के भाव दर्शाये गए हैं-

1) लालन भाव

2) सख्य भाव

3)माधुर्य भाव

लालन भाव का बहुत सुन्दर उदाहरण श्रीरामकृष्ण परमहंस हैं जिसमें काली माँ उनकी माता हैं तथा वे उनके पुत्र हैं।

सख्य भाव वह है जो अर्जुन का श्रीकृष्ण के प्रति है। उद्धव जी भी श्रीकृष्ण के सखा रहे हैं।

माधुर्य भाव वह है जो पति का अपनी पत्नी के प्रति या पत्नी का अपने पति के प्रति रहता है, जिसमें आपस में कुछ भी छिपा नहीं रहता। उस प्रकार श्रीभगवान तथा भक्त के मध्य भी कुछ छिपा नहीं रहता।

श्री गुलाबराव जी महाराज ने इस माधुर्य भाव की रचना की। माधुर्य भाव सर्वोपरि कहलाता है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

पुत्राचे अपराध। जरी जाहले अगाध।
तरी पिता साहे निर्द्वंद्व। तैसें साहिजो जी॥

जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के सारे अपराध सहन करके बार-बार उन्हें अवसर प्रदान करते हैं, उसी प्रकार आप भी मेरे अपराध क्षमा कर दीजिएगा। यह पीड़ा अर्जुन के मन में है क्योंकि उनके पिता महाराज पाण्डु का पहले ही निधन हो चुका था। वे पितामह भीष्म की गोद में पले-बढ़े हैं, इसलिए श्रीभगवान ही उनके पिता हैं।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
तुम्हीं हो साथी, तुम्हीं सहारे। कोई न अपना सिवा तुम्हारे॥
तुम्हीं हो नैया, तुम्हीं खेवैया। तुम्हीं हो बन्धु, सखा तुम्ही हो॥
तुम्हीं हो माता, पिता तुम्हीं हो। तुम्हीं हो बन्धु, सखा तुम्हीं हो॥

अर्जुन के मन का उसी प्रकार का भाव इस श्लोक में है।

11.45

अदृष्टपूर्वं(म्) हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा,
भयेन च प्रव्यथितं(म्) मनो मे।
तदेव मे दर्शय देवरूपं(म्),
प्रसीद देवेश जगन्निवास॥11.45॥

जिसको पहले कभी नहीं देखा, उस रूपको देखकर (मैं) हर्षित हो रहा हूँ और (साथ ही साथ) भयसे मेरा मन अत्यन्त व्यथित हो रहा है। (अतः आप) मुझे (अपने) उसी देवरूप (शान्त विष्णुरूप को) दिखाइये। हे देवेश! हे जगन्निवास! (आप) प्रसन्न होइये।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "आपका ऐसा रूप जो इससे पूर्व कभी किसी ने नहीं देखा, ऐसा रूप देखकर मेरा मन आनन्दित हो रहा है। यह विशालता, यह व्यापकता भी आपमें समायी हुई है, इसलिए मेरा मन भी व्यापक हो गया। एक ओर तो मैं आनन्दित हो रहा हूँ तथा दूसरी ओर मैं भय से व्याकुल भी हो रहा हूँ। अब मुझसे यह व्याकुलता सहन नहीं हो रही है। क्षमा कीजिएगा! मैंने आपको यह विश्वरूप दिखाने के लिए बाध्य किया। आपने मेरी क्षमता बढ़ायी, मेरा दृष्टिकोण बढ़ाया। आपने मुझे दिव्य दृष्टि प्रदान की किन्तु अब मुझसे यह दृश्य देखा नहीं जा रहा है, अतः अब आप मुझे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए अपना देव रूप अथवा चतुर्भुज रूप दिखाइए, जिसमें सारा संसार निवास करता है।

11.46

किरीटिनं(ङ्) गदिनं(ञ्) चक्रहस्तम्,
इच्छामि त्वां(न्) द्रष्टुमहं(न्) तथैव।
तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन,
सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते॥11.46॥

मैं आपको वैसे ही किरीट (मुकुट)धारी, गदाधारी (और) हाथमें चक्र लिये अर्थात चतुर्भुज रूपसे देखना चाहता हूँ। (इसलिये) हे सहस्रबाहो! हे विश्वमूर्ते! (आप) उसी चतुर्भुजरूप (शंख, चक्र, गदा पद्मसहित) हो जाइये।

विवेचन- अर्जुन कहते हैं, "हे विश्वमूर्ति भगवान्! मुझे आपका वह सुन्दर चतुर्भुज रूप बारम्बार याद आता है। मुकुट धारण किए हुए, हाथ में गदा लिये हुए जो आपने बाद में श्री भीमसेन को दी, सुदर्शन चक्र धारण किए हुए वह सुन्दर रूप देखने की मेरी इच्छा है। आप अपने सहस्रबाहु समेट लीजिए तथा फिर से चतुर्भुज हो जाइए। मैं आपको शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए उसी चतुर्भुज रूप में देखना चाहता हूँ। मुझे आपका वही रूप प्रिय है तथा वही रूप मुझे शान्ति प्रदान करता है।

ज्ञानेश्वर महाराज इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन करते हैं-

तें हें विश्वरूप आपुलें । तुम्हीं मज डोळां दाविलें ।
तरी माझें मन झालें । हृष्ट देवा ॥

परि आतां ऐसी चाड जीवीं । जे तुजसीं गोठी करावी ।
जवळीक हे भोगावी । आलिंगावासी ॥

अर्थात् "आपने विश्वरूप दिखाया, मैं बहुत आनन्दित हो गया। आपके इतने मुख हैं तथा इतने बाहु हैं तो मुझे समझ नहीं आ रहा है कि मैं कौन से मुख से वार्ता करूँ? तथा यदि मैं आपको आलिङ्गन करूँ तो आप अपने किस बाहु से मुझे आलिङ्गन करेंगे? आपके इतने सारे चरण हैं तो मैं कौन से चरण में शरणागति प्राप्त करूँ?"

हे विश्वरूपाचे सोहळे । भोगूनि निवाले जी डोळे ।
आतां होताति आंधले । कृष्णमूर्तीलागीं ॥

ज्ञानेश्वर महाराज का बहुत सुन्दर भाव है। वे कहते हैं कि यदि मुझे भोग तथा मोक्ष प्राप्त करना है तो भी आपके उस चतुर्भुज या द्विभुज रूप से ही प्राप्त करना है। मुझे अब यह रूप नहीं देखना है। मुझे आपका वही रूप देखना है।

11.47

श्रीभगवानुवाच
मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं(म्),
रूपं(म्) परं(न्) दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं(म्),
यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम्॥11.47॥

श्रीभगवान् बोले - हे अर्जुन! मैंने प्रसन्न होकर अपनी सामर्थ्यसे मेरा यह अत्यन्त श्रेष्ठ, तेजस्मवरूप, सबका आदि (और) अनन्त विश्वरूप तुझे दिखाया है, जिसको तुम्हारे सिवाय पहले किसीने नहीं देखा है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे अर्जुन! मैंने तुम्हें भयभीत करने के लिये इस रूप का दर्शन नहीं दिया है। मैं तुम पर प्रसन्न हो गया तथा मुझे लगा कि तुम्हें मेरी अपरम्पार महिमा का दर्शन करवाना चाहिए, इसलिए मैंने प्रसन्नता से तुम्हें योगेश्वर बन कर अपना यह तेजोमय रूप दिखाया है। मैंने परब्रह्म के साथ योग करते हुये अपने आदि, अनन्त, सनातन तथा विश्वरूप का दर्शन तुम्हें दिया। मैंने आज तक किसी को यह रूप नहीं दिखाया है। एक बार यशोदा मैया को दिखाया किन्तु तत्काल अपना मुख बन्द कर दिया। मुझे लगा कि मुझे दिव्य मान कर वे मेरी पूजा करने लग जायेंगी। मैं तो इस पृथ्वी पर धर्म संस्थापना के लिये कृष्ण रूप लेकर आया हूँ। दूसरी बार जब मैं हस्तिनापुर की सभा में शान्तिदूत बन कर गया, तब दुर्योधन ने अपने सेवकों को मुझे बन्दी बनाने का आदेश दिया, तब क्रोधित होकर मैंने उसे भयकम्पित करने के लिये अपना यह भयावह रूप दिखाया।"

11.48, 11.49

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैः (र्),
न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः(श्) शक्य अहं(न्) नृलोके,
द्रष्टुं(न्) त्वदन्येन कुरुप्रवीर॥11.48॥
मा ते व्यथा मा च विमूढभावो,
दृष्ट्वा रूपं(ङ्) घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः(फ्) प्रीतमनाः(फ्) पुनस्त्वं(न्),

तदेव मे रूपमिदं(म्) प्रपश्य॥11.49॥

हे कुरुश्रेष्ठ! मनुष्य लोकमें इस प्रकारके विश्वरूपवाला मैं न वेदोंके पाठसे, न यज्ञोंके अनुष्ठानसे, न शास्त्रोंके अध्ययनसे, न दानसे, न उग्र तपोंसे और न मात्र क्रियाओंसे तेरे (कृपापात्रके) सिवाय और किसीके द्वारा देखा जा सकता हूँ।
यह मेरा इस प्रकारका उग्र रूप देखकर तुझे व्यथा नहीं होनी चाहिये और विमूढ़भाव (भी) नहीं होना चाहिये। (अब) निर्भय (और) प्रसन्न मनवाला होकर तू फिर उसी मेरे इस (चतुर्भुज) रूपको अच्छी तरह देख ले।

विवेचन- पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि माँ बदाम का हलवा देना चाहती है किन्तु आजकल का बच्चा मैगी की माँग करता है। श्रीभगवान कहते हैं, "अर्जुन! मैं तुम्हें इतना सुन्दर रूप दिखा रहा हूँ। अपना कर्त्तव्य समझकर तुम्हें व्यापकता का संस्पर्श करा रहा हूँ, किन्तु तुम्हें वही रूप चाहिए।"

श्रीभगवान का भी एक नियम है कि जो भक्त माँगते हैं, वही वे देते हैं। यदि हमारी माँगने की क्षमता ही कम होगी, हम उनसे शाश्वत माँगेंगे ही नहीं तो वे भी वही देते रहेंगे जो हमने चाहा है।

जिस प्रकार एक बालक को रिझाने के लिये माँ उसे खिलौने आदि देती है तो वह प्रसन्न होता है, किन्तु जब तक बालक के मन से माँ के लिये आर्त पुकार नहीं निकलती, तब तक माँ भी उसे गोद में नहीं उठाती। श्रीभगवान का भाव भी भक्तों के लिये यही होता है। यदि भक्त को भोगों के लिये श्रीभगवान चाहिए तो ठीक है, वही ले लो किन्तु श्रीभगवान के लिये श्रीभगवान चाहिए, इसे अनन्य भक्ति कहते हैं। श्रीभगवान कहते हैं, "मेरा यह विकराल रूप देखकर तुम व्याकुल न हो तथा अपना मूढ़ भाव भी छोड़ दो। अर्जुन! तुम फिर से मेरा वह चतुर्भुज रूप देख लो।

यह श्रीभगवान का भक्तों के लिए वरदान है कि भक्त जिस प्रकार चाहते हैं, श्रीभगवान उसी रूप में आ जाते हैं। श्रीहनुमान के दास्यभाव के लिये वे स्वामी बन जाते हैं, श्रीरामकृष्णदेव के पुत्रभाव के लिये वे काली माँ बन जाते हैं।

यहाँ ज्ञानेश्वर महाराज और श्रीभगवान का एक सुन्दर भाव है-

या अर्जुनाचिया बोला। विश्वरूपा विस्मयो जाहला।
म्हणे ऐसा नाहीं देखिला। धसाळ कोणी।।

म्हणौनि विश्वरूपलाभें श्लाघ। एथिचें भय नेघ नेघ।
हें वांचूनि अन्य चांग। न मनीं कांहीं।।

श्रीभगवान कहते हैं, "मैंने तुम्हें इतना सुन्दर रूप दिखाया किन्तु तुम अभी भी मेरे छाया मात्र का दर्शन ही करना चाहते हो। यह विश्वरूप अत्यन्त सुन्दर रूप है। इससे अच्छा और कोई रूप ही नहीं है। तुम इससे भयभीत न हो। इससे सुन्दर कोई और रूप ही नहीं है। तुम इस रूप से प्रेम करने लगो। तुम्हारे मन से घृणा चली जाएगी।"

हम सब अच्छाई से प्रेम करते हैं और बुराई से घृणा करते हैं। हमारे मन में ये दो भाव प्रकट होते हैं। सन्त-महात्मा आदि सभी को अपने हृदय से लगा लेते हैं। उनके मन में किसी के लिये घृणा नहीं होती।

श्रीभगवान कहते हैं-

हें रूप जरी घोर। विकृति आणि थोर।
तरी कृतनिश्चयाचें घर। हेंचि करीं।।

"यह घोर विकृत रूप है किन्तु इसी से प्रेम करना सीखो।"

श्रीभगवान कहते हैं-

परि नेणसीच गांवढिया। काय कोपों आतां धनंजया।
आंग सांडोनि छाया। आलिंगितोसि मा ?

यह सत्य है कि हिन्दी भाषी साधकों को यह कठिन प्रतीत होता होगा किन्तु ज्ञानेश्वर महाराज की कुछ ओवियों की अनुभूति हमें लेनी चाहिए। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि यहाँ श्रीभगवान अर्जुन को गर्दभ कहते हैं तथा कुछ अपशब्द भी कहते हैं। श्रीभगवान कहते हैं, "अरे! मैं अभी तुम पर क्रोधित हूँ? यह विश्वरूप मेरा शरीर है और तुम छाया रूप को माँग रहे हो तथा छाया रूप का आलिङ्गन करना चाहते हो।"

हें नव्हे जो मी साचें। एथ मन करूनियां काचें।
प्रेम धरिसी अवगणियेचें। चतुर्भुज जें।।

श्रीभगवान कहते हैं कि "चतुर्भुज रूप से प्रेम करना थोड़ा निम्न स्तरीय है।" इसलिये यहाँ ज्ञानेश्वर महाराज निराकार परमात्मा की महिमा गाते हैं। उनके अनुसार निराकार तथा साकार, दोनों महत्त्वपूर्ण हैं।

आदिगुरु शङ्कराचार्य निराकार के लिये कहते हैं-

मनोबुद्ध्यहङ्कार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे |
न च व्योम भूमिर्न तेजो न वायुः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम् ||

श्रीभगवान कहते हैं, **"मैं वह चिदानन्द शिवरूप हूँ, निराकार हूँ, मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, शरीर, वाणी, पग आदि नहीं हूँ।"**

भजे व्रजैक मण्डनम्, समस्त पाप खण्डनम् ,
स्वभक्त चित्त रञ्जनम्, सदैव नन्द नन्दनम्।

वे आगे कहते हैं कि **"निराकार की पूजा करते हुये तुम अपने द्विभुज या चतुर्भुज रूप के प्रेम को भी कम मत कर देना। वह भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।"**

11.50

सञ्जय उवाच
इत्यर्जुनं(म्) वासुदेवस्तथोक्त्वा,
स्वकं (म्) रूपं(न्) दर्शयामास भूयः ।
आश्वासयामास च भीतमेनं(म्),
भूत्वा पुनः(स्) सौम्यवपुर्महात्मा॥11.50॥

सञ्जय बोले – वासुदेवभगवान् ने अर्जुनसे ऐसा कहकर फिर उसी प्रकार से अपना रूप (देवरूप) दिखाया और महात्मा श्रीकृष्णने पुनः सौम्यरूप (द्विभुज मानुषरूप) होकर इस भयभीत अर्जुनको आश्वासन दिया।

विवेचन- सञ्जय कहते हैं, "श्रीवासुदेव ने भयभीत अर्जुन को यह बताते हुए, आश्वासन देने के लिये पुनः अपना वह सौम्य द्विभुजरूप धारण किया।

श्रीभगवान के तीन रूप हैं- विश्वरूप, चतुर्भुजरूप या देवरूप तथा द्विभुजरूप।

इसके बाद अर्जुन के मनोभाव को ज्ञानेश्वर महाराज भी प्रकट करते हैं-

तैसें शिष्याचिये प्रीती जाहलें ।

कृष्णत्व होतें तें विश्वरूप केलें ।

तें मना नयेचि मग आणिलें । कृष्णपण मागुतें ॥

"अरे! शिष्य की प्रीति के लिये श्रीभगवान क्या-क्या कर देते हैं। अपने शिष्य रूप अर्जुन के प्रेम के कारण अपने कृष्ण रूप को विश्वरूप में परिवर्तित कर दिया तथा जब अर्जुन का मन उसे देखकर भयभीत हो गया तब वे पुनः कृष्ण रूप में आ गये।"

हो कां जे कृष्णाकृतीचिये मोडी ।

होती विश्वरूपपटाची घडी ।
ते अर्जुनाचिये आवडी ।

उकलूनि दाविली ॥

वे कहते हैं कि मानो कृष्ण रूप में विश्वरूप समाया हुआ था, उन्होंने अर्जुन की इच्छा के कारण उन्हें विश्वरूप दिखाया तथा फिर से उसे कृष्ण रूप में समाहित कर लिया।

11.51

अर्जुन उवाच
दृष्ट्वेदं(म्) मानुषं(म्) रूपं(न्), तव सौम्यं(ञ्) जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः(स्), सचेताः(फ्) प्रकृतिं(ङ्) गतः॥11.51॥

अर्जुन बोले - हे जनार्दन! आपके इस सौम्य मनुष्य रूपको देखकर (मैं) इस समय स्थिरचित्त हो गया हूँ (और) अपनी स्वाभाविक स्थितिको प्राप्त हो गया हूँ।

विवेचन- अब सम्मोहित अर्जुन को धीरज आ गया। वे कहते हैं, "हे जनार्दन, आपका यह मनुष्य रूप देखने के उपरान्त अब मैं स्थिर चित्त और सचेत हो गया हूँ। इस प्रकार से मानो मैंने अपनी प्रकृति को फिर से प्राप्त कर लिया है।" इस प्रकार से अर्जुन कहने लगते हैं कि जैसे मेरे प्राणों में प्राण आ गए हों क्योंकि मैंने आपका वह कृष्ण रूप देख लिया है तथा आपने वह विश्वरूप थाम लिया है।

11.52

श्रीभगवानुवाच
सुदुर्दर्शमिदं(म्) रूपं(न्), दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य, नित्यं(न्) दर्शनकाङ्क्षिणः॥11.52॥

श्रीभगवान् बोले - मेरा यह जो (चतुर्भुज) रूप (तुमने) देखा है, इसके दर्शन अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। देवता भी इस रूपको देखनेके लिये नित्य लालायित रहते हैं।

विवेचन- अब यहाँ पुनः श्रीकृष्ण और अर्जुन का मूलरुप में आकर संवाद आरम्भ होता है। इससे पूर्व समस्त संवाद त्रिष्टुप छन्द में था और अभी वह अनुष्टुप छन्द में शुरू हो जाता है। श्रीभगवान, अर्जुन से कहते हैं, "आज तुमने मेरा जो अत्यन्त दुर्लभ रूप देखा है, उसे देखने के लिए देवता भी नित्य आकाङ्क्षित रहते हैं। उनके मन में भी सदा यह अपेक्षा रहती है कि श्रीभगवान के इस दुर्लभ रूप को देखें।"

11.53

नाहं(म्) वेदैर्न तपसा, न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं(न्), दृष्टवानसि मां यथा॥11.53॥

जिस प्रकार (तुमने) मुझे देखा है, इस प्रकार का (चतुर्भुजरूप वाला) मैं न तो वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे अर्जुन! जिस प्रकार से तुमने आज मुझे देखा है, इस प्रकार का चतुर्भुज रूप मैं विश्व में किसी को नहीं दिखाता। वेदों के अध्ययन के द्वारा भी इस रुप का दर्शन नहीं होता। वेदों में इस रूप का वर्णन तो अनेक बार आता है, परन्तु इस रुप की अनुभूति नहीं प्राप्त होती। मनुष्य जितने भी तप करे, दान करे और यज्ञ करे परन्तु इस रूप को देखा नहीं जा सकता है। किसी महाकुम्भ में स्नान करने से भी इस रूप को नहीं देखा जा सकता, अपितु उससे पुण्य मिल सकता है।"

तो श्रीभगवान के इस रूप को देखना कैसे सम्भव हो सकता है? या फिर इसे देखने के लिए क्या पात्रता है? इस पात्रता को श्रीभगवान अगले श्लोक में बताते हैं।

11.54

भक्त्या त्वनन्यया शक्य, अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं(न्) द्रष्टुं(ञ्) च तत्त्वेन, प्रवेष्टुं(ञ्) च परन्तप॥11.54॥

परन्तु हे शत्रु तापन अर्जुन! इस प्रकार (चतुर्भुजरूपवाला) मैं (केवल) अनन्य भक्तिसे ही तत्त्वसे जाननेमें और (साकाररूपसे) देखनेमें और प्रवेश (प्राप्त) करनेमें शक्य हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "हे परन्तप अर्जुन! केवल अनन्य भक्ति से ही तत्त्व से जानना, साकार रूप से देखना तथा उनसे एकाकार होना सम्भव है।" श्रीभगवान को समग्रता से जानना मात्र अनन्य भक्ति से ही सम्भव है।

श्री रामदास स्वामी जी इस भक्ति की व्याख्या करते हैं। "जो कभी विभक्त नहीं होता, जो श्रीभगवान के साथ सदा एकाकार रहता है। उसके मन के तार श्रीभगवान के साथ सदैव जुड़े रहते हैं। वह अन्य भोगों के लिए श्रीभगवान की भक्ति नहीं करता, अपितु श्रीभगवान की भक्ति के लिए भक्ति करता है। श्रीभगवान की प्राप्ति के लिए भक्ति करता है। जैसी हमारे सन्त, महात्माओं की भक्ति होती थी, वैसी भक्ति।

सन्त तुकाराम महाराज को शिवाजी महाराज ने अनेक स्वर्ण मुद्राएँ, उनकी पत्नी के लिए अच्छे-अच्छे वस्त्र, बच्चों के लिए खाने-पीने की सामग्री आदि बहुत सारे उपहार भेज दिए परन्तु सन्त तुकाराम महाराज ने उसको स्वीकार नहीं किया। पत्नी से कह कर वे सारे अच्छे और बहुमूल्य वस्त्र उतरवा दिए, आभूषणों को भी वापस कर दिया। उन्होंने श्रीभगवान से कहा, "हे भगवान! मुझे लोभ में मत डालिये।" वे जानते थे कि ऐसी वस्तुओं से मन की शान्ति प्राप्त नहीं होती। ऐसे तो लोभ और बढ़ जाता है। श्रीभगवान मुझे ऐसी वस्तुएँ नहीं चाहिए। मुझे तो आप की भक्ति चाहिए।" सन्तों की जीवनियाँ पढ़ने से हमें ज्ञात होता है कि अनन्य भक्ति क्या होती है? यदि सन्त तुकाराम महाराज वे बहुमूल्य उपहार ले लेते तो क्या हो जाता? इससे उनकी गरीबी तो दूर हो सकती थी परन्तु वे भोग में लिप्त होकर श्रीभगवान से दूर हो सकते थे।

श्रीरामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द जी के बीच के भक्ति प्रसङ्ग को भी हमने पहले सुना है। विवेकानन्द जी के पिताजी की मृत्यु के उपरान्त उनकी वित्तीय स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई थी। उन पर बहुत सारा ऋण चढ़ गया था। श्रीरामकृष्ण परमहंस जी ने स्वामी विवेकानन्द जी से कहा कि आज मङ्गलवार है। काली माता से वे जो भी चाहें, माँग लें। श्रीरामकृष्ण परमहंस के निर्देशानुसार स्वामी विवेकानन्द जी ने तीन बार माता काली के दर्शन किए परन्तु वे उनसे कुछ भी नहीं माँग सके। उन्होंने हर बार यही कहा कि "हे

माँ! मुझे भक्ति दो, ज्ञान दो, वैराग्य दो।"

हमारे सन्त महात्माओं के अन्तर्मन की भावना कैसी रही होगी! हम सोच भी नहीं सकते। ठाकुर जी कहते हैं कि तुम नहीं माँग सकोगे, मैं ही तुम्हारे घर के लोगों के लिए सारी व्यवस्था किए देता हूँ।

श्रीज्ञानेश्वर महाराज भी इस भक्ति का वर्णन करते हुए बताते हैं-

परी ते भक्ति ऐसी परिजन्याची श्रुतिका जैसी

धरे वाचुन येण्यारसी गतिचे देणे परिजन्याची श्रुति का जैसी।।

अर्थात, वर्षा की एक बूँद जब आकाश से चलती है, तो धरती के अतिरिक्त और कहीं नहीं जाती, वही उसकी गति है। उसी प्रकार परमात्मा के प्रति एकाकार, वही चाहिए मुझे। जब गङ्गा मैया चलती हैं तो उसके निकट के सारे प्रवाह उनमें मिलते चले जाते हैं। इन सभी को लेकर गङ्गा मैया गङ्गासागर में मिलने जाती हैं। गङ्गा मैया एक ही लक्ष्य, अनन्य भक्ति का लक्ष्य लेकर चलती हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज आगे कहते हैं-

का सकल सम्पत्ति घेउनी, समुद्रात वसती

गङ्गा जैसी अनन्य गती मिळाली ची मिळे |

यह बहुत सुन्दर ओवी है, "सारे जलप्रवाह लेकर गङ्गा जैसी अनन्य गति, उनका प्रवाह कभी इधर-उधर नही बहता। अनन्य गति से समुद्र में ही मिलती हैं। मिलने के बाद कभी वापस नहीं आतीं। इसी भक्ति के साथ, अर्जुन तुम भी उस पायदान तक पहुँच सकते हो। तुम में, मैंने वह अनन्य भक्ति देखी, इसलिए तुम्हें यह दर्शन हुआ है। इस अध्याय का जो अन्तिम श्लोक है वह आदिगुरु शङ्कराचार्य जी का बहुत ही प्रिय श्लोक है। यह श्लोक भक्ति के लक्षण प्रकट करने वाला श्लोक है।

11.55

मत्कर्मकृन्मत्परमो, मद्भक्तः(स्) सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः (स्) सर्वभूतेषु, यः (स्) स मामेति पाण्डव॥11.55॥

हे पाण्डव! जो मेरे लिये ही कर्म करनेवाला, मेरे ही परायण (और) मेरा ही प्रेमी भक्त है (तथा) सर्वथा आसक्तिरहित (और) प्राणिमात्रके साथ वैरभाव से रहित है, वह भक्त मुझे प्राप्त होता है।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान तीन बातें करने और तीन बातें न करने के नियम बता रहे हैं। श्रीभगवान कहते हैं, "हे पाण्डव! श्रीभगवान के लिए कर्म करने वाला। कोई भी कर्म श्रीभगवान के लिए सोच कर करने वाला, मेरे ही परायण और मेरा ही प्रेमी भक्त है।" अर्थात् श्रीभगवान उसके परम बिन्दु हैं। मन्दिर में जाकर हम श्रीभगवान की परिक्रमा लगाते हैं, श्रीभगवान को हम केन्द्र में रखते हैं। घर में जब आरती होती है तो हम स्वयं की भी परिक्रमा करते हैं, अर्थात् हमारे अन्दर के श्रीभगवान की परिक्रमा। ऐसा प्रेमी भक्त, जिसकी आसक्ति संसार के प्रति सर्वथा छूट गई है, जो प्राणी मात्र के साथ बैर-भावना से रहित है, ऐसा भक्त मुझे प्राप्त कर लेता है। प्राप्त करने के बाद उसकी दृष्टि भी दिव्य दृष्टि हो जाती है।"

श्रीमद्भगवद्गीता की एक विशेषता है। यह अध्यात्म शास्त्र पढ़ने का ग्रन्थ है, अपने जीवन में उतारने का ग्रन्थ है। पूज्य स्वामीजी कहते हैं, "गीता पढ़ें, पढ़ाएँ, जीवन में लाएँ।" श्रीभगवान यह ज्ञान बताते-बताते अर्जुन को विश्वरूप दिखा देते हैं किन्तु हमें जो करना है, वह भी श्रीभगवान ने हमें बता दिया। जो सारा कर्म इस प्रयोजन से करता है कि परमात्मा के लिये कर रहा है, जिसने अपने जीवन के केन्द्र में उस परमात्मा को रखा है, ऐसा भक्त श्रीभगवान को प्राप्त कर लेता है तथा फिर उसकी दृष्टि भी इस प्रकार की दिव्य दृष्टि हो जाती है कि वह सम्पूर्ण विश्वरूप देख सकता है।

इस के साथ ही यह अध्याय पूर्ण हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र-

प्रश्नकर्ता- पद्मिनी दीदी
प्रश्न- धृतराष्ट्र ने सञ्जय से पूछा कि मेरे और पाण्डु के पुत्रों के बीच क्या हो रहा है? तो ऐसा कहा जाता है कि धृतराष्ट्र ने अपना-पराया किया था किन्तु हम भी सामान्य रूप से इसी प्रकार करते हैं? इससे कैसे छूटें?
उत्तर- हम सब देह बुद्धि में हैं और इस प्रकार होना स्वाभाविक है किन्तु जब हम समग्रता से सोचने लगते हैं और यह समझ जाते हैं कि यह सब मोह है, सभी की उत्पत्ति उस परमात्मा से हुई है तो हमारी यह भेद दृष्टि धीरे-धीरे शिथिल होने लगती है।

जिस प्रकार श्रीभगवान ने गीता जी में कहा है-

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप।।4.5।।

अर्थात् हमारे कई जन्म हो चुके हैं। इस देह के रिश्ते इस जन्म तक सीमित हैं। हम इस बात से अनभिज्ञ हैं किन्तु श्रीभगवान सर्व ज्ञाता हैं। माया का आवरण इस ज्ञान को ढक लेता है।

प्रश्नकर्ता- दिलीप राव भैया
प्रश्न- धर्म और कर्म में से कौन श्रेष्ठ है?
उत्तर- धर्म का अर्थ आप पूजा पद्धति से समझ रहे हैं, जबकि भगवद्गीता के अनुसार कर्त्तव्य ही धर्म है।
कर्त्तव्य का अर्थ है वह कार्य जो करने योग्य है। जैसे- मातृ धर्म, पितृ धर्म, पुत्र धर्म आदि।

प्रश्नकर्ता- दिलीप राव भैया
प्रश्न- मेरे पुत्र को सरलता के कारण बहुत कष्ट होता है तो क्या करना चाहिए?
उत्तर- कई बार अत्यधिक सरल स्वभाव भी समस्या बन जाता है। अर्जुन सरल भी थे और वीर भी।

इसके सम्बन्ध में एक कथा है-

एक बार एक साधु जङ्गल से जा रहे थे। वहाँ उन्हें एक सर्प मिला। उसने कहा कि मैं बहुत व्यथित हूँ। सभी लोग मुझसे बहुत डरते हैं। मुझे क्या करना चाहिए? साधु ने उत्तर दिया, तुम्हें बिना कारण किसी को दंश नहीं करना चाहिए। जब साधु पुनः उस जंगल से लौट रहे थे तब उन्हें वह सर्प पुनः मिला और साधु ने देखा कि वह सर्प लहूलुहान स्थिति में है। साधु ने उसकी स्थिति का कारण पूछा। इस पर सर्प ने उत्तर दिया कि मैं आपकी बताई बात का अनुसरण कर रहा था। इस पर साधु महाराज बोले मैंने यह नहीं कहा था कि यदि कोई तुम पर अन्याय करे, पत्थर मारे तो भी तुम उसका प्रतिकार मत करो। मैंने अकारण ही किसी को दंश करने के लिए मना किया था किन्तु यदि कोई अन्याय करता है तो उसका प्रतिकार करना आवश्यक है अन्यथा अन्याय करने वाला और अधिक बलशाली होता चला जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता हमें अन्याय का प्रतिकार करना सिखाती है।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां (म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'विश्वरूपदर्शनयोग' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||